# शिक्षक की स्वायत्तता

**संजीव बिजल्वाण**

हम सभी यह भली–भांति समझते हैं कि शिक्षा मानव जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक सार्थक जीवन जीने के लिए मानव का शिक्षित होना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी है शिक्षा का बेहतर होना। बेहतर शिक्षा, यानी व्यक्ति अपने जीवन के सभी आयामों में एक सार्थक जीवन जी सके। व्यक्ति रूपी इकाई के रूप में अपने जीने को सार्थक कर सके। हमारे जीवन और शिक्षा के इस अंतर्संबंध की महत्ता और सार्थकता को समझने के लिए शिक्षा में गुणवत्ता की अपेक्षा की जाती है। अच्छी शिक्षा के लिए विभिन्न स्तरों पर कई तरह के प्रयास हमेशा से किए जाते रहे हैं लेकिन कभी–कभी ऐसा महसूस होता है कि यह सभी प्रयास नाकाफी हैं, इसके कई कारण हैं। शिक्षा में बदलाव की एक सतत् प्रक्रिया और गति होती है। जिस अनुपात में शिक्षा से समाज की अपेक्षाएं बढ़ती और बदलती रहती हैं, उस अनुपात में शिक्षा में हो रहे बदलाव हमें दिखाई नहीं देते हैं, इसीलिए हमें लगता है कि शिक्षा में वैसा नहीं हो रहा है जो हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप हो या कहें कि कुछ बेहतर नहीं हो रहा है। जबकि शिक्षा के माध्यम से होने वाले बदलाव तात्कालिक नहीं अपितु दीर्घकालिक होते हैं।

भारत के शैक्षिक इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो स्वतः ही यह बात समझ में आती है कि समय–समय पर विभिन्न आयोगों द्वारा देश की शिक्षा व्यवस्था में व्यापक बदलावों की सिफारिशें की जाती रही हैं। सरकारों द्वारा देर–सवेर ही सही, कुछ कदम उठाए जाते रहे हैं। कभी शैक्षिक स्कीम अर्थात् पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में बदलाव किए गए तो कभी शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की गई। कभी सर्व शिक्षा अभियान व रमसा जैसी कुछ परियोजनाओं के माध्यम से ढांचागत विकास व शिक्षा में गुणवत्ता लाने के प्रयास किए जाते रहे। इन तमाम प्रयासों के फलस्वरूप भौतिक रूप से शिक्षा में कुछ बेहतर अवश्य हुआ है लेकिन दूसरी ओर हम यह भी मानते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता घटी है। यह बात जितनी सच है उतनी ही अधूरी भी है। शिक्षा का स्तर इतना भी नहीं गिरा है जितनी समाज की धारणाएं बन गई हैं या बनाई जा रही हैं। बहुत कुछ अच्छा भी हो रहा है। एक सच्चाई यह भी कि प्रचलित सिस्टम में अच्छे करने वालों को प्रोत्साहन नहीं मिलता है और न ही गड़बड़ करने वालों को किसी तरह का दंड। क्या यह हमारा दुर्भाग्य है या कहें कि सिस्टम का स्वभाव ही ऐसा होता है। वास्तव में गुणवत्ता घटी नहीं बल्कि वह उस अनुपात में नहीं बढ़ी जैसी अपेक्षाएं हैं या जैसी आज की मांग है। हमारी शिक्षा से अपेक्षाएं तो बढ़ती चली गई लेकिन उसके अनुरूप हमारी तैयारी नहीं हो पायी। शिक्षा का अधिकार अधिनियम इस बात का एक ठोस उदाहरण है जिसे पूर्णतः लागू करने के लिए अभी कुछ वर्ष और लग जाएंगे। पूर्व में हुए सभी प्रयासों के बाद आज शिक्षाविदों व नीति–नियंताओं को इसका अहसास होने लगा कि शिक्षा में बदलाव के लिए इसकी मुख्य कड़ी, यानी शिक्षक को केंद्र में रखना होगा। इसीलिए 12वीं योजना में देशभर में शिक्षक शिक्षा पर खासा जोर दिया जा रहा है। शिक्षक शिक्षा

का काम करने वाले शैक्षिक संस्थानों को भी अधिक सक्षम व संसाधन संपन्न बनाया जा रहा है।

प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उन कारणों को हम सभी जानते हैं, जिन्हें शिक्षा की बेहतरी में बाधक माना जाता है। जैसे– राजनीतिक हस्तक्षेप, व्यवस्था में पारदर्शिता की कमी, समाज और विद्यालय के बीच के रिश्तों का कमजोर पड़ना, प्रोत्साहन का अभाव, परंपरागत कक्षा शिक्षण पर अधिक जोर, अनुसमर्थन की कमी, शिक्षक–शिक्षिकाओं में प्रतिबद्धता की कमी आदि। इन सभी कारणों के बीच दो पक्ष हमेशा पिसे जाते हैं। एक तो शिक्षक और दूसरा बच्चा। जिस प्रकार शिक्षा में किए जाने वाले सभी प्रयास बच्चों की शिक्षा को बेहतर करने के लिए किए जाते हैं, उसी प्रकार हर अवरोध व कमी का खामियाजा भी अंततः बच्चों को ही भुगतना पड़ता है। इसके लिए समाज, सरकार और यहां तक कि अधिकारियों द्वारा भी शिक्षकों को ही दोषी माना जाता है। ऐसा मानने के कुछ वाजिब कारण जरूर हैं लेकिन पूरी तरह से शिक्षक को जिम्मेदार ठहराना भी न्यायोचित नहीं है।

दरअसल, देश–काल की बदलती परिस्थितियों में शिक्षा के मायने बदले हैं। शिक्षण के तौर–तरीके भी बदल रहे हैं और समाज की अपेक्षाएं तो बदली ही हैं। तो फिर शिक्षक और शिक्षार्थी की भूमिका बदलना तो स्वाभाविक ही है।

अब व्यवहारवाद से सृजनवाद की दिशा में आगे बढ़ने की तैयारी की जा रही है। इसके चलते अब शिक्षा के सभी आयामों को एक नए नजरिए से देखने–समझने की जरूरत है। अब शिक्षक एक परमज्ञानी नहीं अपितु एक सुगमकर्ता की तरह है, बच्चा एक स्वतंत्र शिक्षार्थी के रूप में है न कि केवल एक ज्ञान लेने वाला। अब ज्ञान कोई बनी–बनाई चीज की तरह नहीं बल्कि सृजित की जाने वाली एक प्रक्रिया की भांति है।



इन बदले संदर्भों, मायनों व भूमिकाओं में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है शिक्षक और शिक्षार्थी की स्वायत्तता। सीखने–सिखाने की प्रक्रिया तभी लचीली और संदर्भ व परिवेश आधारित होगी जब शिक्षक इसके लिए स्वायत्त होगा। शिक्षा की पूरी व्यापक व्यवस्था में कक्षा शिक्षण एक ऐसा क्षेत्र है जिसके लिए शिक्षक सबसे अधिक जिम्मेदार, स्वायत्त व स्वतंत्र होता है। पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम लक्ष्य व उद्देश्य के रूप में तो पाठ्यपुस्तकें सहायक सामग्री के रूप में उपलब्ध होती हैं। इन सबका महत्त्व कक्षा शिक्षण में तभी है जब शिक्षक उन्हें अपने

प्रयासों से जीवंत बनाता है, नहीं तो इनमें लिखी बातें केवल किताबी ज्ञान तक सीमित रह जाती हैं। कक्षा शिक्षण से जुड़ी सभी बातों के केन्द्र और परिधि, बच्चे और शिक्षक ही होते हैं। इनमें होने वाली अंतःक्रियाएं ही शिक्षण को जीवंत और रोचक बनाती हैं। कौन सा बच्चा कैसे सीखता है, कौन सा बच्चा किस तरह की गतिविधियों में अधिक रुचि लेता है, कौन सी बातें हैं जो बच्चों को सीखने के लिए अधिक प्रेरित करती हैं, आदि बातों को शिक्षक से बेहतर और कौन समझ सकता है? यह प्रक्रियाएं जितनी प्रभावी, रोचक, नियोजित होंगी, शिक्षण उतना ही सफल माना जाएगा। इस प्रकार कक्षा शिक्षण विशुद्ध रूप से शिक्षक के अधिकार क्षेत्र में आता है। इसका कतई यह आशय नहीं है कि कक्षा शिक्षण में बच्चे की भूमिका नगण्य होती है। यह कोई शिक्षक का एकाधिकार या तानाशाही का क्षेत्र नहीं है। इसीलिए स्वायत्तता की बात की गई है न कि स्वतंत्रता की।

शिक्षक की महत्ता व भूमिका के कमजोर होने के कारणों को भी समझना होगा। यह अचानक होने वाली घटना नहीं है बल्कि इसके लिए इतिहास का सहारा लेना होगा। मूलतः इसकी जड़ें औपनिवेशिक काल की ओर जाती हैं। ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व भारत में शिक्षा का संचालन समाज द्वारा किया जाता था। शिक्षक की व्यवस्था भी समाज करता था। अंग्रेजों की मंशा ऐसी शिक्षा व्यवस्था कायम करने की थी जिसके माध्यम से ऐसे लोग तैयार हों जो उनके राज–काज में सहयोगी बन सकें। उन्होंने शिक्षा को समाज के लिए नहीं बल्कि अपनी नीतियों को पोषित करने के एक सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित करने के प्रयास किए। इस प्रकार शिक्षा का संचालन समाज के हाथों से सत्ता के अधीन कर दिया गया। समूची शिक्षा व्यवस्था सरकार के नियंत्रण में कर दी गई। ऐसे में शिक्षक भला कैसे अछूता रह सकता था। उस पर भरोसा किए जाने की जगह उसे नियंत्रित किया जाने लगा। नौकरशाही के नियंत्रण ने शिक्षक की भूमिका और हैसियत को कम करने का काम किया। अतः हम समझ सकते हैं कि आज शिक्षा में हम जिन समस्याओं से रूबरू होते रहते हैं उनका बीजारोपण हमारे अतीत में हुआ था।

शिक्षक की स्वयं की तैयारी भी उसके पेशेवर होने में प्रश्न चिह्न लगाती है। अब परंपरागत तरीकों से शिक्षण कार्य प्रभावी नहीं हो सकता है। शिक्षण की प्रक्रियाओं को बदलने की जरूरत है।

हर बार सत्र के शुरू में अक्सर यह देखने को मिलता है कि विद्यालयों में शिक्षण कार्य इसलिए सुचारू नहीं हो पाता क्योंकि पाठ्यपुस्तकें समय पर उपलब्ध नहीं करवाई जाती हैं। बिना इनके क्या और कैसे पढ़ाएं? ऐसा मान लिया गया है कि बिना पाठ्यपुस्तकों के शिक्षण कार्य संभव ही नहीं है। कम से कम प्रारम्भिक स्तर पर पाठ्यपुस्तकों के अलावा कई ऐसे माध्यम हैं जो शिक्षण कार्य को अधिक रोचक व प्रभावी बनाते हैं। जैसे– आस–पास का परिवेश, गांव, घर, समुदाय आदि। पाठ्यपुस्तकों पर बढ़ती निर्भरता ने भी शिक्षक को कमजोर करने का काम किया है। इससे कक्षा शिक्षण के अन्य विकल्पों की ओर न तो उनका ध्यान जाता है और न ही वे उन पर भरोसा कर पाते हैं। शिक्षक प्रशिक्षणों में होने वाले बदलावों को वे समझने के लिए भी तैयार नहीं होते हैं। आखिर इन प्रशिक्षणों का मुख्य उद्देश्य है शिक्षक का सशक्तीकरण। क्या शिक्षक केवल कक्षा शिक्षण तक ही सीमित रह सकता है? क्या शिक्षा दर्शन व शिक्षा मनोविज्ञान जैसे विषयों के सिद्धांतों को गढ़ने व समझने का अधिकार केवल शिक्षाविदों को ही है, शिक्षकों को नहीं? सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक तो शिक्षक है जिसका सीधा संबंध शिक्षार्थी से होता है। अतः आज के दिन शिक्षक को हर दृष्टि से सशक्त होने

की जरूरत है। विचार, शिक्षण, विषयगत ज्ञान तथा तकनीकी आदि–आदि।

शिक्षा में सभी की अपनी–अपनी भूमिका है। पॉलिसी बनाने का काम सरकार का है तो पैडागॉजी और करीकुलम एससीईआरटी तथा डायट के जिम्मे है। प्रैक्टिस का संपूर्ण काम शिक्षक का होता है। यद्यपि अब पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में भी शिक्षकों को शामिल किया जाने लगा है। कक्षा में किस बच्चे को क्या और कैसे पढ़ाया जाना है, यह निर्णय विशुद्ध रूप से एक शिक्षक का ही होता है और होना भी चाहिए। कक्षा में करवाई जाने वाली सभी गतिविधियों का संचालन आखिर शिक्षक ही तो करता है। कक्षा में सरकार या उसकी नीतियों का, राजनीतिक हस्तक्षेप जैसे तमाम कारणों का सीधे तौर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। हां, कुछेक कारण जरूर प्रत्यक्ष रूप से इसमें दखल देते हुए प्रतीत होते हैं। हमारे सामने कई उदाहरण हैं, उन शिक्षकों के जो विषम परिस्थितियों में बेहतर काम कर रहे हैं। यह कैसे संभव है, उन सब कारणों के होते हुए जिन्हें हम सबसे बड़ा बाधक मानते हैं। आखिर हर शिक्षक के सामने विसंगतियां किसी न किसी रूप में तो होती ही हैं। और वे कौन से कारण हैं कि किसी  विद्यालय में सभी संसाधन उपलब्ध होते हुए भी, मानक के अनुसार पर्याप्त शिक्षक होते हुए भी और विद्यालय का सुगम जगह पर होते हुए भी वहां के बच्चों का दक्षता स्तर अपेक्षानुरूप नहीं होता है।

दूसरी ओर, इसके विपरीत परिस्थितियों में भी कोई एकल शिक्षक बच्चों में उन सभी दक्षताओं को निखारने में सफल रहता है जो उस स्तर पर अपेक्षित हैं। यद्यपि शिक्षा की गुणवत्ता के लिए विद्यालय भवन से लेकर बैठने की व्यवस्था तक और सुंदर परिवेश से लेकर कंप्यूटर जैसे सभी पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण हैं जिन्हें नकारा नहीं जा सकता है। विद्यालय विकास में इन सभी की अपनी–अपनी महत्ता व भूमिका तो होती ही है। ऐसे तमाम उदाहरण हमें दिखाई देते हैं, विषम परिस्थितियों में भी बेहतर प्रदर्शन करने वाले विद्यालयों और अनुकूल परिस्थितियों में भी बेहतर न कर पाने वाले विद्यालयों के। उपर्युक्त दोनों उदाहरण यह समझने के लिए पर्याप्त हैं कि शिक्षा में गुणवत्ता का मुख्य आधार शिक्षक ही है। शिक्षक के अतिरिक्त अन्य आयाम कमतर होंगें तो भी चलेगा लेकिन शिक्षक की प्रतिबद्धता, लगन, मेहनत, प्रेरणा, प्रयास, लगातार सीखते रहने की ललक, इत्यादि ही वह केंद्रीय तत्व हैं जो गुणवत्ता के लिए सर्वथा अनिवार्य हैं।

शिक्षक स्वयं को अधिक से अधिक सशक्त बनाकर न केवल बाहरी हस्तक्षेप व प्रभाव को कम कर सकता है बल्कि विद्यालय में कक्षा शिक्षण व सभी गतिविधियों को बच्चों के सीखने पर केंद्रित कर सकता है। इससे शिक्षक का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ने के साथ–साथ उस पर समाज का भरोसा भी बढ़ने लगेगा। शिक्षक को स्वयं की हैसियत और भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानना होगा। उसे खुद ही स्वयं की पीठ थपथपाते हुए अपना मूल कार्य करते जाना है, शिक्षक को समझना होगा कि उसकी असल सफलता केवल कुछ फीसदी बच्चों का प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होना या राष्ट्रपति पुरुस्कार मिलना नहीं है अपितु हर उस बच्चे का सीखना है जो उसकी जिंदगी से गुजरता है।

---

**संजीव बिजल्वाण** : अज़ीज प्रेमजी फाउंडेशन, जिला संस्थान उत्तरकाशी (उत्ताराखंड) में कार्यरत हैं।